ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-11* December- 2017
Innovation The Research Concept

स्वाधीनता संग्राम में पं. हीरालाल शास्त्री का योगदान

रंजिता जाना
व्याख्याता,
इतिहास विभाग,
एल0बी0एस0 महिला
स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बधाल, जयपुर, राजस्थान

सारांश

स्वाधीनता संग्राम में पं. हीरालाल शास्त्रीजी का ऐतिहासिक उपलब्धियों में बहुत योगदान रहा हैं। उनकी ऐतिहासिक उपलब्धियों को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। ये कर्मठ राजनेता व प्रशासक तो थे ही परन्तु उनके व्यक्तित्व का एक पहलू स्वतंत्रता नायक होना भी रहा है जिससे सभी परिचित नहीं है। इस शोध के माध्यम से ऐसे ही नवीन पहलूओं को सामने लाने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द : स्वाधीनता संग्राम, देशी रियासतें, आन्दोलन।

प्रस्तावना

विदेशी शासन के कुचक्र एवं देशी रियासतों व रजवाडों के शोषण से राजस्थान की जनता पराधीनता के दोहरे कष्ट झेलने के लिए बाध्य थी। यहाँ स्वतत्रंता संबधी आन्दोलनों का संचालन करने के लिए दोहरी भूमिका वाले ऐसे नेतृत्व की अपेक्षा थी जो विदेशी शासन का उन्मूलन करने तथा स्थानीय रियासतों के कुशासन से मुक्ति के लिए स्थानीय प्रजा का पथ प्रशस्त कर सके। हीरालाल शास्त्री में इस प्रकार की कार्यकुशलता दिखाई देती थी। प्रजामंडल के अध्यक्ष, प्रधानमंत्री आदि प्रमुख पदों पर रहते हुए जन आन्दोलनों का नेतृत्व करते हुए इन्होने राजस्थान के स्वाधीनता संग्राम में अपनी सक्रिय भूमिका अदा की।[1] वास्तविक रूप में शास्त्री जी कभी राजनीति के पक्षपाती नहीं रहे, वे उसे सर्पिणी या प्रपंच कहा करते थे। जीवन कुटीर का प्रयोग शुरू करते समय भी उन्होने व उनके साथियों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भी राजनीति में भाग न लेने का संकल्प किया था। पर साढ़े सात वर्ष तक वनस्थली में रहकर और ग्रामवासियों के बीच काम करने के बाद वे यह महसूस करने लगे थे कि राज्य में परिवर्तन हुए बिना ग्राम सुधार की जड़ें भी आगे बढ़ने वाली नहीं है। उधर परिस्थितियों ने भी शास्त्री जी को राजनीति में आने को विवश किया।[2]

राजनीतिज्ञ के रूप में

राजस्थान में संचालित जन आन्दोलनों के प्रमुखतः दो रूप दिखाई देते है – राजनैतिक संस्थाओं की स्थापना हेतु आन्दोलन तथा प्रजामंडल की स्थापना व उत्तरदायी शासन की मांग।[3] प्रजामंडल की स्थापना के क्रम में जयपुर में 1931 ई. में कपूरचन्द पाट्नी द्वारा जयपुर प्रजामंडल 1934 ई. में बीकानेर व हाडौती प्रजामंडल की स्थापना की गई।[4] अलवर तथा भरतपुर में भी प्रजामंडल की स्थापना करके स्थानीय जनता में जागरूकता उत्पन्न करने का कार्य किया गया। राजपूताना के देशी राज्यों में जयपुर राज्य का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। यद्यपि यहां 1931 में ही प्रजामंडल स्थापित कर दिया गया था। लेकिन राजनीतिक क्षेत्र में इसका प्रवेश नहीं था, यह निष्प्राण सी थी तथा समाजसुधार व खादी प्रचार तक ही इस संगठन का कार्य सीमित रहा। राजनैतिक दृष्टि से प्रभावहीन होने के कारण आवश्यक जनसहयोग न मिल पाने से जयपुर प्रजामंडल निर्जीव सा ही रहा। 1936 में पुनः इस संगठन को पुनर्जीवित करने का विचार किया गया जिसमें शास्त्री जी ने सक्रिय सहयोग दिया।[5] अतः सेठ जमनालाल बजाज की सलाह पर पण्डित हीरालाल शास्त्री को वनस्थली से बुलाया गया। 09 नवम्बर 1936 को जयपुर प्रजामंडल के संविधान में संशोधन किया गया। लेकिन उसने नियमित कार्य फरवरी 1937 ई. में आरम्भ किया।[6] इसके साथ ही इनके उद्देश्यों एवं कार्यक्रमों को निम्नलिखित ढंग से निर्धारित किया गया –

1. जयपुर राज्य भर में प्रजामंडल के ज्यादा से ज्यादा सदस्य बनाकर प्रजामंडल के संगठन को मजबूत करना।
2. जनता की तकलीफों की जानकारी हासिल करना और उन्हें राज्य कर्मचारियों के पास पहुँचाकर दूर करने की कोशिश करना।
3. जनता की सार्वजनिक शिक्षा के लिए विद्यालय एवं पुस्तकालय खोलना।

4. रचनात्मक सहयोग करना जिसमें विरोध निन्दा और खण्डन की भावना परित्याग करके जनता के सम्पर्क में आना, जनता के कष्टो का सही–सही पता लगाना तथा उन्हे दूर करना, जनता का ज्ञान बढ़ाना, उनमें आत्मविश्वास और शक्ति का संचार करना।[7]

प्रजामंडल का मुख्यालय जयपुर में रखा गया। उसका प्रमुख उद्देश्य महाराजा की छत्रछाया में सांवैधानिक उपायों से जनता के प्रति उत्तरदायी शासन की स्थापना करना था साथ ही साथ जनता की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में सुधार करना भी प्रजामंडल का लक्ष्य था। उसने घोषणा की कि प्रजामंडल को धार्मिक और साम्प्रदायिक मामलों से कोई सरोकार नहीं है।[8] इन उद्देश्यों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए शास्त्री जी अपने जीवन कुटीर के कर्मठ साथियों के साथ राज्य भर में लोकमत को जाग्रत और संगठित करने का प्रयास आरंभ कर दिया। प्रजामंडल के कार्यों को व्यापक बनाया गया। जयपुर रियासत के प्रत्येक कस्बे व जिले में सुसंगठित प्रजामंडल की कमेंटियां बनाई गई।[9] प्रजामंडल की कार्यकारिणी के अध्यक्ष जमनालाल बजाज, उपाध्यक्ष चिरंजीलाल मिश्रा, मुख्य सचिव हीरालाल शास्त्री एवं संयुक्त सचिव कपूरचन्द पाटनी बनाये गये। वनस्थली के प्रायः सभी कार्यकर्ता जैसे चन्द्रशेखर भटट्, कल्याण शर्मा, वीरेन्द्र चौहान, धीरेन्द्र सिंह भदौरिया, बद्रीनारायण खूटेंटा, हनुमान शर्मा आदि प्रजामंडल में कार्य करने लगे। कई किसान कार्यकर्त्ताओं जैसे लादूराम जोशी, टीकाराम पालीवाल, पूरणचन्द जैन, रामकरण जोशी आदि ने भी प्रजामंडल के कार्यो में अपना पूरा सहयोग दिया।[10] प्रजामंडल ने एक विज्ञप्ति जारी की जिसमें बताया गया कि (1) प्रजामंडल चाहता है कि राजा और प्रजा में तथा प्रजा की भिन्न–भिन्न श्रेणियों में परस्पर विश्वास कायम रहे और बिना किसी भेदभाव के सारी प्रजा अमन चैन से रहे। (2) कानून बनाने में, खर्चे उठाने में तथा दूसरें मामलों में राज, प्रजा की जरूरतों का ख्याल रखें, प्रजा के भावों को समझे और प्रजा की राय की कद्र करें। (3) कानून के अन्तर्गत लोगों को परस्पर मिलने –जुलने की बातचीत करने की और पढ़ने–लिखने की आजादी रहे और गैर कानूनी तरीके से किसी को दण्डित न किया जा सके। (4) काम कर सकने वाले किसी भी मनुष्य को बेकार न रहना पड़े और काम करते करते किसी को भूखा–नंगा न रहना पड़े। (5) गरीबों की बढ़ती हुई कर्जदारी और दुर्दषा के कारणों की खोज करके उनकों मिटाने के लिए कुछ योजना बनाई जाए। (6) शहर में कस्बे में और गाँवों में कहीं भी लड़कों और लड़कियों को मामूली पढ़ाई के बिना न रहना पड़े। (7) लोगों को न्याय मिले और वह परेशानी और ठगाई के बिना, सुभीते के साथ मिले। (8) गरीब से गरीब आदमी को भी बीमार पड़ने पर इलाज के सुभीते के बिना मरना न पड़े। (9) खेती और व्यापार–व्यवसाय की उन्नति के लिए नये–नये उपाय किये जाए और घरेलु धन्धों को मरने से बचाया जाए। (10) ऊपर लिखी बातों में राज की और से जितनी कोशिश हो रही है, उसके लिए भला माने और जहाँ–जहाँ कुछ कमी नजर आये वहां कानून और विधान के दायरे के भीतर राज का ध्यान दिलाने और इस प्रकार कठिनाईयों से भरे हुए शासन कार्यो को सुविधाजनक बनाने में राज की सहायता करें।

प्रजामंडल ने आरंभ में ही राज्य को सजग कर दिया कि यदि सरकार समय के अनुकूल नहीं चलेगी तो उसके दूरगामी परिणाम होगें। सरकार ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। प्रजामंडल ने राज्य के लिए धारा सभा की स्थापना, बोलने और लिखने की स्वतत्रंता, लाग–बाग को हटाने और अकालग्रस्त क्षेत्रों में लगान वसूली न किए जाने की मांग रखी। जयपुर के तत्कालीन इंस्पैक्टर जनरल पुलिस, एफ.एल.यंग को आशंका थी कि प्रजामंडल जयपुर महाराज को हटाने के लिए यह कार्य कर रहा है। अतः इसने 24 मार्च 1937 को शास्त्री जी को इस संबध में एक पत्र लिखा कि राज्य सरकार प्रजामंडल के इस अधिकार को मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि वह एक ऐसी संस्था है जो जनता का प्रतिनिधित्व करती है। यदि प्रजामंडल अपनी समस्त शक्ति को सामाजिक कार्यो में लगाये तो उसकी इस प्रकार की कार्यवाही से उसकों जनता के दुःखों, कष्टो या आवश्यकताओं का पता चल सकता है ऐसी सूरत में उसके लिए यह आसान होगा कि वह विभिन्न राज्य अधिकारियों से मिलकर जनता के कष्टो का निवारण कर सके। यंग ने आगे कहा कि प्रजामंडल अपने प्रचारकों को नियन्त्रण में रखने में असमर्थ है। विशेषकर किसान वर्ग में उसके प्रचारक किसानों को लगान नहीं देने के लिए भड़काते है.....जिन सुधारों की बात प्रजामंडल कर रहा है, वे सुधार पहले से ही सरकार के विचाराधीन है और यदि वह उसकों मान लेगी तो प्रजामंडल यह जताने का प्रयास करेगा कि जो भी सुधार हुए है वे सब उसके प्रयत्नों के ही परिणाम है।[11]

शास्त्री जी ने यंग को मिलकर समझाया कि प्रजामंडल का उद्देश्य महाराजा को हटाना नहीं बल्कि उसके अधीन उत्तरदायी शासन स्थापित करने का है।[12] प्रजामंडल की जनरल कमेटी ने 30 जुलाई 1937 को हीरालाल शास्त्री को यंग वार्ता जारी रखने का अधिकार दिया। पुनः संगठित होने के लगभग एक वर्ष की अवधि में प्रजामंडल के करीब चार हजार सदस्य बन चुकें थे। कोटकासिम को छोड़ बाकी सब निजामतों और जयपुर शहर तथा सीकर में प्रजामंडल की जिला कमेंटियॉं बन चुकी थी। हर जिले में एक वाचनालय और पुस्तकालय खोला गया।[13]

1938 में ही जयपुर गजट में पब्लिक सोसाइटीज रेग्युलेषन नामक नया कानून पारित हुआ जिसकी इजाजत के बिना कोई संस्था स्थापित नहीं की जा सकती थी। किन्तु जयपुर की जनता ने इस कानून को पंसद नहीं किया और यह 'काला कानून' के नाम से प्रसिद्व हुआ। शास्त्री जी ने इसे एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया और प्रजामंडल को सोसाइटीज अधिनियम के तहत पंजीकरण करवाने से साफ मना कर दिया। उनका तर्क था कि यह कोई नई संस्था नहीं है, सन 1931 से चल रही है। अतः नियमानुसार पंजीकरण अनिवार्य नहीं है। उधर सरकार पंजीकरण के माध्यम से ही इसकी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने का मानस बनाए बैठी थी।[14]

प्रजामंडल का कार्य तेजी से बढ़ने लगा। प्रजामंडल का प्रथम अधिवेशन 8–9 मई 1938 ई. को सेठ

जमनालाल बजाज के सभापतित्व में करना तय किया गया।[15] 1938 ई. से शास्त्री जी के राजनीतिक व्यक्तित्व का अभ्युदय विधिवत् प्रारंभ हो गया। राजनीतिक घटनाचक्र तेजी से घूमा और अल्प अवधि में ही शास्त्री जी अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व सुदीर्घ अनुभव तथा अथाह परिश्रम के फलस्वरूप राजनीति के क्षितिज पर छा गये।

देश में तीव्र गति से घूमता हुआ राजनीतिक घटनाओं का चक्र देशी राज्यों को भी अपनी लपेट में लेता गया। शेष भारत में आजादी की मांग ने देशी राज्यों को भी उत्तरदायी शासन की बलवती मांग उठाने के लिए प्रेरित किया। उपर बताया जा चुका है सन 1938 ई. के शुरू में तय हुआ कि सेठ जमनालाल बजाज को प्रजामंडल का सभापति बनाया जाए और जयपुर शहर में प्रजामंडल का पहला जलसा किया जाए। बड़े ठाठ से यह जलसा हुआ। राज्य की ओर से कई दिक्कतें कदम कदम पर खड़ी की गई किन्तु अन्त में जलसा बड़ी कामयाबी से हुआ।[16] इस शानदार जुलूस में हजारों लोगों ने भाग लिया जिससे राज्य भर में प्रजामंडल की साख जम गई।[17] इस अवसर पर कस्तूरबा गाँधी जयपुर आई। उन्होने प्रजामंडल के अधिवेशन के बाद 10 मई 1938 को सायं नथमलजी के कटले में स्त्रियों की एक विशेष सभा को संबोधित किया। अधिवेशन के अवसर पर जयपुर की कला, कारीगरी और उद्योग की एक प्रर्दशनी भी लगाई। अधिवेशन में लगभग 3–4 हजार महिलाओं ने भाग लिया जिसमें वनस्थली की छात्राएँ भी शामिल थी।[18] इससे पूर्व जयपुर राज्य और सीकर ठिकाने के बीच किसी बात को लेकर जोरदार ठन गई थी। उस तनाव भरे वातावरण में प्रजामंडल की और से शास्त्री जी तथा पाटनी ने कुशल मध्यस्थता की थी। इन सब सफलताओं से प्रजामंडल को लोकप्रियता मिली और उसका बेहद प्रभाव बढ़ा। जिससे राज्य सरकार खिन्न थी और भीतर ही भीतर प्रजामंडल को नष्ट करने के ताक में थी।[19] जयपुर प्रजामंडल का काम अब जयपुर तक ही सीमित नहीं था। बल्कि 1938–39 में राजस्थान के अधिकांश स्थानों में अकाल पडा उसी समय शास्त्री जी ने 1938 में शेखावाटी का दौरा किया उसके साथ हरलाल सिंह, नेतराम सिंह, विद्याधर, रामचन्द्र तथा अन्य किसान नेता भी थे। इन लोगों ने गाँवों में घूम–घूम कर एक सप्ताह तक फसल के बारे में जाँच की। प्रजामंडल के अध्यक्ष जमनालाल बजाज को अकाल में किसानों की मदद के लिए आमंत्रित किया जयपुर के अधिरिकारियों ने किसान नेताओं को बुलाया और दबाव डाला कि वे जयपुर प्रजामंडल से दूर रहे नहीं तो जयपुर राज्य उनके साथ सख्ती से बर्ताव करेगा। इधर मि. यंग ने सर बिचम को पत्र लिखकर आग्रह किया की शास्त्री जी सहित शेखावाटी के जाट नेताओं जिन्होने अभी शेखावाटी का दौरा किया है। इनमें लगान बंदी आन्दोलन चलाने की मंषा है। अतः अध्यादेश पं. 22053 को पुनः लागू किया जाए।[20] 9 दिसम्बर 1938 को स्टेट कौन्सिल जयपुर की बैठक में यह तय किया गया कि मि. डबलू एपु. जी. ब्राउन सैटलमेन्ट कमिश्नर शेखावाटी में दोनो पार्टियों से मिलकर जो लगान तय करे उसे ठिकाने का जागीरदार इस वर्ष वसूल करे तथा लगान न देने के लिए उकसाने वालो पर अध्यादेश को एक साल के लिए लागू किया जाए। 15 दिसम्बर 1938 को यह अधिसूचना जयपुर राज्य में प्रकाशित कर दी गई।[21]

1938–39 में जयपुर राज्य के कुछ भागों में अकाल पड़ गया। ऐसे समय में प्रजामंडल ने अकाल पीड़ितों की सेवा का काम अपने हाथ में लिया। प्रजामंडल के सभापति जमनालाल बजाज, कार्यकारिणी की बैठकों में शामिल होने के लिए तथा अकाल पीड़ितों की सेवा के कार्यो का निरीक्षण करने के लिए जयपुर आ रहे थे कि 29 दिसम्बर 1938 को सवाईमाधोपुर रेलवे स्टेषन पर पहुँचते ही उन पर जयपुर राज्य में प्रवेश करने की पाबंदी का हुक्म तामिल कर दिया गया।[22] इस पर जयपुर सरकार और प्रजामंडल के बीच झगड़ा शुरू हो गया। शास्त्री जी की सलाह पर प्रजामंडल ने सत्याग्रह करने का फैसला कर दिया। शास्त्री जी के नेतृत्व में प्रजामंडल के कार्यकर्ताओं का एक दल गाँधी जी से विचार विर्मश करने के लिए बारदोली जा पहुँचा। जयपुर कौन्सिल को भेजे जाने वाला पत्र का मस्विदा प्रजामंडल की ओर से गाँधी जी ने तैयार किया था। जो कि केवल बोलने, लिखने तथा संगठन करने के लिए नागरिक अधिकारों से संबधित था। लेकिन जयपुर सरकार ने प्रजामंडल की बात मानने से इन्कार कर दिया तत्पचष्चात् जमनालाल बजाज के निषेधाज्ञा भंग किए जाने का फैसला प्रजामंडल की और से किया गया।[23]

जमनालाल बजाज ने जयपुर राज्य द्वारा लगाए गये प्रतिबंध को तोड़कर फरवरी 1939 को जयपुर राज्य में प्रवेश करते हुए बैराठ के निकट गिरफ्तार कर लिए गए। उन्हे मोरांसागर में नजरबंद कर दिया गया। उसी रात्रि जयपुर में खेजड़े वाले रास्ते में स्थित शास्त्री सदन में चल रही बैठक में भाग ले रहे पं. हीरालाल शास्त्री, चिरंजीलाल अग्रवाल, हरिश्चन्द शर्मा, कपूरचन्द पाटनी और हंस डी. राय को गिरफ्तार कर मोहनपुरा गाँव के एक मकान में नजरबंद कर दिया। दूसरे ही दिन श्री चिरंजीलाल मिश्र भी पकड़े गये। उन्हे भी मोहनपुरा कैम्प में बंद कर दिया गया।[24]

संघर्ष का बिगुल बज चुका था। आन्दोलन जोर पकड़ने लगा और सत्याग्रहियों के जत्थे रोज शहर के हृदय–स्थल जौहरी बाजार से देवड़ी जी के मन्दिर व अन्य स्थानों पर गिरफ्तारियां देने लगे। मोहनपुरा कैम्प में जगह नहीं रही तो सत्याग्रहियों को केन्द्रीय जेल में भेजा जाने लगा। उधर मोहनपुरा कैम्प में कोर्ट लगाकर शास्त्री जी व अन्य साथियों को छःमहिने की सजा सुना दी गई। शास्त्री जी ने एक वक्तत्य जारी कर कोर्ट का बहिष्कार कर दिया। जेल सुविधाएँ न मिलने पर शास्त्री जी व अन्य साथियों ने भूख हड़ताल कर दी। इस पर शास्त्री जी व अन्य दस सत्याग्रहियों को लाम्बा के जिले में भेज दिया। लेकिन भूख हड़ताल वहाँ भी जारी रही। यह खबर जयपुर पहुँची तो पूरे शहर में जोरदार हड़ताल रही। आखिर सरकार ने आठ दिन बाद बन्दियों को सभी प्रकार की सुविधाऐं देना मंजूर कर लिया। आने जाने वालों पर भी पाबंदी ढीली कर दी। जेल में रहते हुए भी शास्त्री जी सत्याग्रह आन्दोलन के लिए निर्देश देने का काम करते रहे कड़ी निगरानी के बावजूद शास्त्री जी हिदायते लिखकर बाहर भेज देते थे इन कार्यो में श्रीमती रतन

शास्त्री व छोटे पुत्र दिवाकर ने मदद की इस प्रकार शास्त्री जी का बाहर से सतत् संपर्क बना रहा। यद्यपि जेल में रहते हुए भी शास्त्री जी सत्याग्रह आन्दोलन के लिए निर्देष देने का काम करते रहे। शास्त्री जी ने राजनीतिक बन्दियों को आवश्यक सुविधाओं की मांग के लिए भूख हड़ताल का नेतृत्व किया था। लेकिन खाने–पीने की अच्छी सुविधाऐं मिल जाने के बाद भी खुद जौ की रूखी रोटी और एक सब्जी भोजन में और नाष्ते में भूगडें लेते थे। जमनालाल के खराब स्वास्थ्य के चलते उन्हे मोरांसागर से जयपुर के निकट पुराने घाट में कर्णावतों के बाग में लाया गया। वहां सरकार ने समझौते की बातचीत शुरू की। बातचीत में शास्त्री जी को शामिल करने के लिए सत्याग्रहियों को पास ही झालाणा कैम्प में ले आया गया।[25]

सत्याग्रह के लिए जत्थे जयपुर राज्य के बाहर से बंबई, वर्धा, धूलिया आदि से भी आए। स्त्रियों ने भी पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर योगदान किया। 6 स्त्रीयों का एक जत्था 5 मार्च 1939 को हीरालाल शास्त्री जी की पत्नी रतन देवी के नेतृत्व में गिरफ्तार हुआ।[26] जयपुर रियासत के अन्य कस्बों में भी सत्याग्रह का प्रभाव पड़ा। शेखावाटी के किसानों ने प्रजामंडल को पूरा समर्थन दिया। झुंझुनूँ, चौमू, पिलानी, दौसा, बगड़ आदि में सत्याग्रह के दौरान हड़तालें, लाठीचार्ज और गिरफ्तारियाँ हुई। सत्याग्रह के दौरान गाँधी जी रात को बारह बजें जयपुर स्टेशन से गुजरे तो जयपुरवासियों ने स्टेशन पर हजारों की संख्या में उपस्थित होकर उनका स्वागत किया जयपुरवासियों के शान्त और सुव्यवस्थित प्रर्दशन को देख महात्मा जी ने अपने संदेश में कहा कि "जयपुर का आन्दोलन पूर्णरूप से अहिंसात्मक चल रहा है ..... यह खुशी की बात है कि जयपुर के कार्यकर्ता भीड़ पर नियन्त्रण रखने का पूरा प्रयत्न कर रहें है।"[27]

सत्याग्रह चल रहा था कि महात्मा गाँधी दिल्ली में वायसराय से मिले और न जाने वहाँ क्या बात हुई, उन्होने सत्याग्रह स्थगित करने का संदेश जयपुर भिजवा दिया।[28] गाँधी जी के आदेश से जयपुर सत्याग्रह स्थगित हो जाने के बाद काफी अर्से तक जयपुर सरकार से प्रजामंडल की खींचतान चलती रही। अन्ततोगत्वा सत्याग्रहियों को धीरे धीरे छोड़ना शुरू हो गया। आखिर में शास्त्री जी आदि दस सत्याग्रहियों का नम्बर आया। शास्त्री जी आदि को अलग–अलग तीन काउन्टों पर कुल मिलाकर 18 महिनो की सजा हुई थी, पर उसे एक साथ भुगतना था। सो करीब साढ़े पाँच महिनो में वह सजा पूरी हो गई। बस्सी के पास वाले मोहनपुरा कैम्प से जब शास्त्री जी आदि छूटकर आए तो जयपुर शहर में बड़ा जुलूस निकला। जनता का उत्साह देखते ही बनता था। कुछ समय बाद जमनालाल बजाज जी छोड़ दिये गये। उनके छूटने पर भी वैसा ही जुलूस जयपुर शहर में निकला।[29]

प्रजामंडल की एक मांग हिन्दुस्तानी प्राइम मिनिस्टर नियुक्त करने की थी शायद इसलिए उसे खुश करने की दृष्टि से सर बिचम के स्थान पर राजा ज्ञाननाथ जैसे अंग्रेज परस्त हिन्दुस्तानी की नियुक्ति प्राइम मिनिस्टर के पद पर कर दी गई। आखिर जयपुर सरकार से समझौता हो गया। जिसके अनुसार प्रजामंडल का रजिस्ट्रेशन करके सरकार ने अपनी आबरू बचाई। प्रजामंडल को लेखन–भाषण संगठन के मौलिक अधिकारों की प्राप्ति हो गई। किसी नये राज्य व्यापी राजनीतिक संगठन को खडा करके दो एक वर्ष की अल्प अवधि में सत्याग्रह जैसी भारी चुनौती को स्वीकार करने की अपने आप में अनूठी मिसाल है। जिसका शायद ही अन्यत्र उदाहरण है। इस सत्याग्रह आन्दोलन में शास्त्री जी एक कुशल संगठक, तपे हुए योद्धा और चतुर राजनीतिज्ञ के रूप में उभर कर आए। जयपुर सरकार से हुए समझौते के आधार पर शास्त्री जी ने ब्रिटिश भारत के स्वतत्रंता सेनानियों की भरपूर सहायता की और जयपुर राज्य कई प्रकार से आजादी की लड़ाई के लिए आधार भूमि बन गया।[30] प्रजामंडल का दूसरा वार्षिक अधिवेशन 25–26 मई 1940 को जयपुर में नथमल जी के कटले में हुआ। इसमें दूर–दूर गाँवों के किसान भी सम्मिलित हुए। पंडाल में कई नारों जैसे उत्तरदायी शासन हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है, नये शासन में प्रजा के चुने हुए प्रतिनिधि हो, भारत एक ओर अखण्ड हो, शासन प्रजा के लिए है, प्रजा शासन के लिए है के बैनर लगाए गये। जमनालाल बजाज इस अधिवेषन के सभापति थे। अधिवेषन की सफलता के लिए गाँधी जी अबुल कलाम आजाद, आचार्य कृपलानी, सी. राजगोपालचारी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद पटट्ाभिसीतारैमया, वल्लभ भाई पटेल, जी.डी. बिड़ला, ब्रजलाल बियानी ने भी बधाई पत्र भेजें।[31]

नवम्बर 1941 में पं. हीरालाल शास्त्री के सभापतित्व में प्रजामंडल का तीसरा अधिवेशन झुंझुनूँ में हुआ। इस अधिवेशन में वर्किंग कमेटी बनाई गयी जिसमें कपूरचन्द पाटनी, भागीरथ कानोडिया तथा सीताराम सेकसरिया ने पूर्ण सहयोग दिया।[32] 25–26 मार्च 1942 को प्रजामंडल का चौथा वार्षिक अधिवेशन पं. हीरालाल शास्त्री के सभापतित्व में सवाईमाधोपुर में किया गया।[33] जिसमें संगठन प्रचार एवं जनसेवा के कार्यक्रम को ध्यान में रखकर आजादी की लड़ाई में सक्रिय सहयोग देने की दृष्टि से कार्यक्रम निर्धारित किये गये।

अगस्त 1942 में अंग्रेंजों भारत छोड़ों आन्दोलन से पहले शास्त्री जी की प्रेरणा से वनस्थली में मध्य भारत सभा और राजपूताना के कार्यकर्ताओं का एक षिविर आयोजित किया गया, जिसमें आने वाले संघर्ष की तैयारी में देशी राज्य के प्रजाजनों की भूमिका पर विस्तार से विचार विमर्श हुआ।[34] बंबई में भी कांग्रेस महासमिति की ऐतिहासिक बैठक से पहले देशी राज्यों के कार्यकर्ताओं की एक बैठक 7–8 अगस्त को हुई थी। हीरालाल शास्त्री ने कांग्रेस महासमिति के बंबई अधिवेशन के अवसर पर हुई रियासती सम्मेलन में जयपुर प्रजामंडल का प्रतिनिधित्व किया उस समय शास्त्री जी जयपुर प्रजामंडल के अध्यक्ष थे और कपूरचन्द पाटनी महामंत्री थे। शास्त्री जी ने उक्त सम्मेलन के संबध में अपनी आत्मकथा में निम्नलिखित विवरण दिया है –"आने वाले संघर्ष की तैयारी के तौर पर कांग्रेस महासमिति की बैठक के समय देशी राज्यों के कार्यकर्त्ताओं की बैठक भी 8 अगस्त को बंबई में हुई थी। किसी ने राजाओं को लिखे जाने के लिए एक मसविदा तैयार किया था, उसमें राजाओं को लिखने के लिए खास

बात यह थी कि या तो अंग्रेजों से लड़ो या 24 घन्टे के भीतर प्रजामंडल को राज संभला दो। उस मसविदे पर विचार होता, उससे पहले ही गाँधी जी आदि नेता पकड़े जा चुके थे और देशी राज्यों में क्या हो? उस विषय में कुछ भी फैसला नहीं हो सका महाराजा को यह लिखने की बात मेरे नहीं जच रही थी कि या आप अंग्रेजों से लड़ो या 24 घन्टे के भीतर प्रजामंडल को राज संभला दो।"[35] बंबई से जयपुर लौटकर शास्त्री जी ने जयपुर प्रजामंडल की कार्यकारिणी व महासमिति की बैठक बुलाई और ब्रिटिश राज द्वारा नेताओं की गिरफ्तारी व दमन प्रवृति की निन्दा की गयी। साथ ही राज्य में उत्तरदायी शासन की मांग को दोहराते हुए महाराजा को लिखा गया। स्पष्टतः 24 घन्टे में राज्य का प्रशासन प्रजामंडल को सौप देने की बात तो अव्यावहारिक थी ही। इसलिए महाराजा को यह लिखा गया कि अंग्रेजों की दमनकारी नीति और उनके युद्ध प्रयत्नों में भारत का सहयोग करने की नीति के विरोध में जयपुर की जनता भी कांग्रेस के साथ है और इस कारण रियासती सरकार से उसका संघर्ष हो सकता है। महाराजा की तरफ से उत्तर मिला की महाराजा की नीति राजकाज में जनता को शामिल करने की है। प्रजामंडल इस उत्तर से संतुष्ट हो गया अब उसके सामने आन्दोलन आरंभ करने का कोई कारण नहीं रहा राज्य में प्रजामंडल को झूठा आष्वासन देकर उसे शैशवकाल में ही समाप्त कर दिया। सर मिर्जा ईस्माइल निश्चिंत हो गये कि देश के अन्य भागों की तरह जयपुर को जनसंघर्ष का सामना नहीं करना पड़ेगा। उन्होंने जयपुर के पॉलिटिकल एजेन्ट मेजर पाउलटन को पत्र लिखकर सूचित किया गया कि यह विष्वास करने के लिए अच्छा कारण है कि जयपुर प्रजामंडल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सहानुभूति में कोई कार्यवाही नहीं करेगा।[36]

जयपुर प्रजामंडल का एक वर्ग जयपुर को भारत छोड़ों आन्दोलन से अलग नहीं रखना चाहता था। इस वर्ग का नेतृत्व कर रहे थे बाबा हरिष्चन्द, रामकरण जोशी, दौलतमल भंड़ारी, हंस डी. राय आदि। इस गुट का प्रतिनिधित्व करते हुए दौलतमल भंडारी ने 16 अगस्त 1942 को शास्त्री जी से भेट कर, अपने साथियों का दृष्टिकोण सामने रखा। शास्त्री जी भंडारी के तर्क से सहमत हो गए। उन्होने 17 अगस्त 1942 की शाम को जयपुर में एक सार्वजनिक सभा में आन्दोलन के श्री गणेष की घोषणा करने का वादा किया। पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार जयपुर में सार्वजनिक सभा हुई, परंतु शास्त्री जी ने अपने भाषण में आन्दोलन की घोषणा करने की बजाए राज्य सरकार के साथ हुई समझौता वार्ता के बारे में प्रकाष ड़ाला। जहाँ तक प्रजामंडल की स्थिति का प्रश्न था, स्थिति यथावत् बनी रही। जयपुर राज्य के भीतर और बाहर, सर्वत्र शास्त्री जी की आलोचना की गई।[37]

बाबा हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगियों ने प्रजामंडल की समझौतावादी नीति का खुला विरोध किया। उन्होने एक नये संगठन आजाद मोर्चा की स्थापना कर आन्दोलन का शुभारंभ कर दिया। आजाद मोर्चा का कार्यालय गुलाबचन्द कासलीवाल के घर पर स्थित था।[38] शास्त्री जी बड़े आसमंजस की स्थिति में थे उन्होने साहस बटोर कर 16 सितम्बर 1942 को मिर्जा ईस्माइल को एक पत्र भेजा जिसमें लिखा कि वे विवशता और परिस्थितियों में बाध्य होकर आन्दोलन कर रहे है। क्योकि जनता इसके लिए बेचैन है।[39] इस पत्र द्वारा प्रधानमंत्री सर मिर्जा ईस्माइल को अल्टीमेटम दिया कि वे (शास्त्री जी) प्रजामंडल के विधान को स्थगित कर आन्दोलन के लिए जयपुर की जनता का आहवान कर रहे हैं कि वह महात्मा गाँधी के निर्देष के अनुसार भारतीय आजादी के संग्राम में पूरी शक्ति के साथ जुट जाये। शास्त्री जी का यह पत्र बंबई में हुई रियासती नेताओं के सम्मेलन में दी गई गाँधी जी की सलाह के सर्वथा अनुरूप था। शास्त्री जी ने अपने इस पत्र में समझौता की किसी प्रकार की गुन्जाइश नहीं छोड़ी थी। जयपुर राज्य सरकार को दिए गये अल्टीमेटम की सार्वजनिक घोषणा शास्त्री जी 18 सितम्बर को करने वाले थे किन्तु नहीं कर सके। शास्त्री जी का अल्टीमेटम पाते ही सर मिर्जा ईस्माइल ने उनकों अपने पत्र में लिखा कि 'आपके पत्र से मुझे गहरा धक्का लगा है और पीड़ा हुई है मैं चाहता हूँ कि आप राज्य में आन्दोलन का विचार छोड़ दे।[40] सर मिर्जा ईस्माइल ने शास्त्री जी को वार्ता के लिए आमंत्रित किया। जिसमें शास्त्री जी और जयपुर राज्य के मध्य विचार विमर्श हुआ जिसके फलस्वरूप सरकार और शास्त्री जी के बीच एक जेन्टलमेन्स समझौते पर हस्ताक्षर हो गए।[41] इस समझौते के विरूद्ध संघर्ष करने का विचार त्याग दिया। शास्त्री जी के अनुसार 'जेण्टलमेन्स एग्रीमेण्ट' द्वारा सरकार ने प्रजामंडल की मुख्यतः मांगे स्वीकार कर ली।[42] जो निम्नलिखित थी–

1. जयपुर राज्य में ब्रिटिश विरोधी और युद्ध विरोधी प्रचार के लिए राष्ट्रीय झण्डे के साथ प्रभात फेरी व जुलूस निकाले जाएगें तो राज्य सरकार की ओर से कोई बाधा नहीं पहुँचायी जाएगी।
2. युद्ध के लिए अंग्रेजों को जयपुर राज्य की ओर से धन जन की सहायता नहीं दी जाएगी।
3. ब्रिटिश भारत में चल रहे आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने वाले कोई भी लोग जयपुर राज्य में आएगें तो उन्हे प्रजामंडल की ओर से सब तरह की सहायता दी जाएगी और राज्य सरकार उनमें से किसी को गिरफ्तार नहीं करेगी।
4. जयपुर महाराजा की ओर से यह सब कुछ होगा तो जयपुर प्रजामंडल की और से महाराजा के खिलाफ सीधी कार्यवाही नहीं की जाएगी। इस समझौते के अनुसार शास्त्री जी के नेतृत्व में प्रजामंडल ने वह सब कुछ हासिल कर लिया था जिसके लिए अन्य राज्यों में लोगों को आन्दोलन करने पड़े। शास्त्री जी के विचार से इस समझौते के द्वारा जयपुर महाराजा और जयपुर प्रजामंडल ब्रिटिश सरकार के मुकाबले बहुत कुछ एक हो गए।[43] लेकिन मिर्जा ईस्माइल ने अपने राजनैतिक चातुर्य से बिना कुछ दिये ही प्रजामंडल को निष्क्रिय बना दिया। इस समझौते के फलस्वरूप शास्त्री जी ने महाराजा के विरूद्ध संघर्ष करने का विचार त्याग दिया। आजाद मोर्चा ने इस समझौते की कटु आलोचना की और अपना आन्दोलन जारी रखा। आजाद मोर्चे के नेतृत्व में स्कूल और कॉलेज के छात्रों ने भी आन्दोलन में भाग लिया जिसके परिणामस्वरूप कई दिनों तक शिक्षण संस्थाएँ

बंद रही और छात्राओं ने भी इसमें अपना योगदान दिया। इसमें वनस्थली विद्यापीठ की कुछ छात्राओं ने भी धरने दिए। एक छात्रा शांति देवी ने 05 अक्टूबर 1442 को एक सभा में जनता को सम्बोधित किया। श्रीमति रतन शास्त्री ने वनस्थली विद्यापीठ को कई आन्दोलनकारियों का आश्रय स्थल बना कर रखा था।[44] कुछ अर्से बाद जवाहरलाल जी के जयपुर आगमन के अवसर पर आजाद मोर्चा भंग हो गया। 1942 के आन्दोलन का जोर कम हुआ और गाँधी जी जेल से छूटकर आए तो आन्दोलन के दौरान जयपुर प्रजामंडल की राजनीति के विषय में उनके सामने कई तरफ से रिपोर्ट पहुँची। शास्त्री जी ने भी सारा हाल बताते हुए अपनी स्थिति स्पष्ट की। गाँधी जी ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि जो कुछ जयपुर प्रजामंडल ने किया वह ठीक किया और दूसरे कुछ लोगों ने प्रजामंडल से अलग होकर जो कुछ किया वह ठीक नहीं था। प्रजामंडल ने जो कुछ जयपुर महाराजा से प्राप्त कर लिया उससे ज्यादा मिलने वाला भी नहीं था। पण्डित नेहरू ने भी पी.ई. एन. कॉन्फ्रेन्स के मौके पर जयपुर आने पर प्रजामंडल की कार्यवाही को सही बताया।

इस प्रकार सन 1938 का उत्तरदायी शासन के लिए जयपुर आन्दोलन जहाँ शास्त्री जी को एक जुझारू लड़ाकू विद्रोही नेता कुशल संगठक के रूप में सिद्ध करता है वही 1942 ई. की देश की नाजुक हालत में सूझबूझ से लिया गया निर्णय उनके व्यवहार पटु राजनेता को उजागर करता है किन्तु दोनों ही स्थितियों में एक बात समान है और वह यह है कि स्थिति के अनुसार निर्भीक होकर अपने को उचित प्रतीत होने वाला कदम उठाना। यही शास्त्री जी की राजनीति का मूलमंत्र रहा है चाहे वह संघर्ष काल हो या शांति काल दोनो ही स्थितियों में निर्भीक और स्वतत्रं निर्णय और आचरण की क्षमता शास्त्री जी के राजनीतिक व्यक्तित्व का प्रमुख तत्व रहा है।[45] ब्रिटिष काल में 1942 के आन्दोलन का वेग कम होने पर राजपूताना के कार्यकर्त्ताओं का सम्मेलन उदयपुर में हुआ। गोकुल भाई भटट् के नेतृत्व में राजपूताना के कार्यकर्ताओं का संगठन बनाया गया और बाद में अखिल भारतीय देशी राज्य लोकपरिषद की राजपूताना रीजनल कौन्सिल बनी। सभी रियासतों के प्रजामंडल उसके अंग बन गए। शास्त्री जी को इस क्षेत्रीय कौन्सिल का महासचिव बनाया गया। रीजनल कौन्सिल की ओर से राजपूताना के कोने–कोने में जाकर शास्त्री जी ने राज्यों के सवालों को हल करवाने की यथावत कोशिश की। कई राज्यों के झगड़े निपटाये और छोटे राज्यों तथा उपराज्यों में पहुँचकर जनता का साहस बढ़ाया। जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर, कोटा, टोंक, अलवर, भरतपुर, बूंदी, जैसलमेर, किशनगढ़, शाहपुरा, झालावाड़, बांसवाड़ा, पालनपुर, ईडर तथा विजयनगर तक राजपूताना रीजनल कौन्सिल के दायरे में थे।[46] राजपूताना के छोटे बड़े सभी राज्यों के अलावा शास्त्री जी ने अखिल भारतीय स्तर पर लोकपरिषद के काम में बहुत अच्छा हाथ बँटाया जिसमें हिमाचल प्रदेश उडीसा और पंजाब आदि प्रदेशो के छोटे–छोटे राज्यों के अतिरिक्त कष्मीर और हैदराबाद जैसे बड़े राज्यों की समस्याओं को संभालने में भी अच्छा योग दिया। जैसलमेर में वहां के तेजस्वी कार्यकर्ता श्री सागरमल गोपा की हत्या का मामला इतना विकट और जघन्य था कि शास्त्री जी को जैसलमेर महाराजा के विरूद्व अंग्रेज रेजिडेन्ट से पत्र व्यवहार करना पड़ा जो सामान्यतः किसी राजा के विरूद्व षिकायत लेकर न जाने की नीति के विरूद्व एक कदम था। फिर भी परिस्थितियों को देखते हुए यह कदम उठाना पडा और उसका फलदायी परिणाम भी हुआ, ऐसा शास्त्री जी का मानना है।[47]

शास्त्री जी जब अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजापरिषद के प्रधानमंत्री बने उस समय भी आर्थिक आदि भार शास्त्री पर ही रहा।[48] आजादी के पूर्व के ये वर्ष बहुत उथल–पुथल के थे। कुछ साल बाद लोकपरिषद भंग कर दी गयी और प्रजामंडल कांग्रेस के घटक बन गए। इधर जयपुर में प्रजामंडल के साथ हुए समझौते के आधार पर एक शासन सुधार समिति का गठन किया गया, जिसमें प्रजामंडल के प्रतिनिधि भी शामिल हुए। इस समिति की सिफारिशों के अनुसार राज्य में प्रतिनिधि सभा और विधानपरिषद की स्थापना की गई जिसमें प्रजामंडल को बहुत अच्छा बहुमत मिला तथा प्रजामंडल के एक प्रतिनिधि देवीशंकर तिवाड़ी को लोकप्रिय मंत्री बनाया गया।[49]

27 मार्च 1947 को जयपुर राज्य में शासन सुधारों की एक महत्वपूर्ण घोषणा की गयी। जिसके अनुसार राज्य में शास्त्री जी के नेतृत्व में एक नया मंत्रिमण्डल बना जिसमें दीवान के अलावा छः सदस्य थे। पं. हीरालाल शास्त्री मुख्य सचिव (प्रधानमंत्री) देवीशंकर तिवाड़ी, दौलतमल भंडारी और टीकाराम पालीवाल तथा सांमत की ओर से कुशल सिंह, गीजगढ़ और रावल अमरसिंह अजयराजपुरा आदि मंत्री बने। इस प्रकार जयपुर में जनता की निर्वाचित सरकार कायम हुई।[50] नई सरकार के सामने कई चुनौतिया थी जयपुर राज्य का सालाना बजट उस वर्ष 3 करोड़ 18 लाख रूपये का था। जनकल्याणकारी कार्यो के लिए अधिक धन की जरूरत थी और यह अधिक धन जनता से ही बिना लगान बढ़ाये या नये कर लगा के एकत्र करने के अलावा कोई चारा नहीं था। वित्त विभाग स्वयं शास्त्री जी ने अपने पास रखा था और अतिरिक्त धन की व्यवस्था उन्हे ही करनी थी।[51]

राजपूताना की विभिन्न रियासतों में गठित प्रजामंडल कांग्रेस का अंग बन चुके थे लकिन अब तक कांग्रेस का कोई अधिवेषन राजपूताना नहीं हुआ था। एक शिष्टमंडल सरदार पटेल के पास इस निमित देहरादून पहुँचा। सरदार पटेल की इच्छा पर शास्त्री जी ने जयपुर में कांग्रेस का 55 वाँ अधिवेषन करने का जिम्मा लिया। कांग्रेस का जयपुर अधिवेषन पहली बार किसी देशी राज्य में सम्पन्न होने वाला अधिवेषन था। इसे बहुत विषाल और शानदार अधिवेषन माना गया। अधिवेषन के लिए आर्थिक व्यवस्था करने और उसके बाद में होने वाले लाखों के घाटे को पूरा करने का जिम्मा शास्त्री जी को उठाना पड़ा। अधिवेषन पर लगभग 56 लाख रूपये खर्च हुए।[52] देश का संविधान बनाने के लिए संविधान सभा गठित की गई थी जिसमें देशी राज्यों के प्रतिनिधि भी शामिल किए गए थे। जयपुर राज्य की और से दीवान सर वी.टी.

कृष्णामाचारी के साथ दो अन्य प्रतिनिधि भेजे गये थे, जिनमें शास्त्री जी भी एक थे।[53]

देश में राजनीतिक परिवर्तन तेजी से हो रहा था। जून 1947 को ब्रिटिश सरकार ने सत्ता हस्तान्तरित करने तथा देश विभाजन की घोषणा कर दी। भारत विभाजन के अवसर पर भड़की साम्प्रादायिक आग ने राजस्थान में एकीकरण की प्रक्रिया को आरंभ करने में सहायता दी। इस एकीकरण की प्रक्रिया में प्रजामंडलों और जनआन्दोलन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। यह प्रजामंडल का ही दबाव था जिसमें राज्यों के शासकों को एकीकरण की प्रक्रिया से सहमत होना पड़ा। ब्रिटिश सरकार की सत्ता हस्तांतरण की योजना के अनुसार रियासते भारत या पाकिस्तान में शामिल हो सकती थी अथवा अपना स्वतत्रं अस्तित्व 1947 से पूर्व स्थापित करना था। जयपुर राज्य उन कतिपय रियासतों में था जो सबसे पहले भारतीय संघ में शामिल हुआ।[54]

जयपुर में उत्तरदायी शासन को एक वर्ष भी नहीं हुआ था कि रियासतों के एकीकरण की प्रक्रिया शुरू हो गई। पहले मत्स्य संघ फिर कोटा में राजस्थान संघ की स्थापना हुई तत्पष्चात् उदयपुर में संयुक्त राजस्थान व अन्त में जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर और सिरोही तथा पूर्व गठित संयुक्त राजस्थान को मिलाकर वर्तमान वृहत्तर राजस्थान का निर्माण हुआ कुछ दिन बाद इसमें मत्स्य संघ भी शामिल कर दिया गया। 1956 में अजमेर और बाद में आबू पर्वत के नए राज्य में विलय से राजस्थान को अपना पूर्ण व वर्तमान स्वरूप प्राप्त हुआ।[55] एकीकरण की इस अत्यन्त कठिन प्रक्रिया में पं. हीरालाल शास्त्री ने अपना सारा ध्यान केन्द्रित करते हुए अत्यधिक श्रम किया शीघ्र ही वृहद राजस्थान की भावी शासन व्यवस्था के संबध में कुछ महत्त्वपूर्ण प्रष्न पैदा हुए।

जयपुर राज्य का राज्यप्रमुख कौन हो? व राजधानी कहाँ बने? इन प्रश्नो के समाधान के लिए वी.पी. मेमन ने सर्वश्री गोकुलभाई भटट् (अध्यक्ष प्रांतीय कांग्रेस कमेटी), माणिक्यलाल वर्मा (प्रधानमंत्री संयुक्त राजस्थान उदयपुर) जयनारायण व्यास (प्रधानमंत्री जोधपुर), एवं पं. हीरालाल शास्त्री (मुख्य सचिव जयपुर) की एक बैठक दिल्ली में बुलाई गई उस बैठक में सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया कि जयपुर के महाराजा सवाईमानसिंह को नए राज्य के राजप्रमुख, उदयपुर के महाराणा भूपालसिंह को महाराज प्रमुख का सम्माननीय पद दिया जाए। वृहद राजस्थान की राजधानी के लिए जयपुर को उपयुक्त समझा गया। सरदार पटेल ने नई संगठित इकाई वृहद राजस्थान का उद्घाटन 30 मार्च 1949 को किया।[56] राजस्थान के प्रधानमंत्री नियुक्ति का प्रष्न अत्यधिक उलझन भरा था। इस पद के लिए जयपुर के प्रमुख सचिव पं. हीरालाल शास्त्री उम्मीदवार थे। वे प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष श्री गोकुलभाई भटट् के सहयोग से रियासती विभागों को आश्वस्त कर चुके थे कि वे ही ऐसे व्यक्ति है जो राजस्थान का प्रशासन सुचारू रूप से चला सकते है। वे जयपुर राज्य में अपनी प्रशासकीय योग्यता की धाक जमा चुके थे। दूसरी ओर राजस्थान प्रदेश कांग्रेस के कार्यकर्ता जयनारायण व्यास को प्रधानमंत्री बनाने के पक्ष थे परंतु रियासती विभाग व्यास जी को यह भार सौपना नहीं चाहता था। इन्ही परिस्थितियों में रियासती विभाग ने स्पष्ट कर दिया कि राज्य में विधान सभा की अहम मौजूदगी में राजस्थान के प्रशासन कि जिम्मेदारी भारत सरकार पर है और वह पं. हीरालाल शास्त्री को ही प्रधानमंत्री पद के लिए उपयुक्त समझती है।[57]

अंततः 30 मार्च 1949 को प्रातः सरदार वल्लभ भाई पटेल ने जयपुर के महाराजा मानसिंह को नये राज्य के राजप्रमुख की शपथ दिलाई और राजप्रमुख ने उसी समय कोटा के महराव भीमसिंह को उपराजप्रमुख एवं श्री हीरालाल शास्त्री को मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलाई।[58] विषाल राजस्थान के प्रथम मंत्रीमंड़ल ने मुख्यमंत्री के अलावा आखिर तक 9 मंत्री रहे– (1) श्री प्रेमनारायण माथुर (उदयपुर) (2) श्री सिद्वराज ढ़ड्डा (जयपुर) (3) श्री भूरेलाल बया (उदयपुर) (4) श्री रघुवरदयाल गोयल (बीकानेर) (5) श्री शोभाराम (अलवर) (6) श्री वेदपाल त्यागी (कोटा) (7) श्री फूलचद बाफणा (जोधपुर) (8) श्री नरसिंह कछवाहा (किसान जोधपुर) (9) श्री हणूतसिंह (जागीरदार जोधपुर) अपने मंत्रीमंड़ल के सदस्यों के बारे में शास्त्री जी का कहना था कि किसी एक की भी कोई एक भी भ्रष्टाचार जैसी शिकायत आज भी मेरे सामने लायी जाए और उसके सही होने के बारे में मेरा समाधान हो जाए तो मैं अपना सिर काट कर रख दू।[59]

राजनीति स्तर पर नई सरकार का कांग्रेस के नेताओं से विरोध चलता रहा, किन्तु गृह मंत्रालय के सहयोग और सरदार पटेल के संरक्षण के कारण सरकार अपने नये दायित्वों के निर्वाह में जुटी रही। 15 दिसम्बर 1950 को सरदार पटेल का निधन हो गया। इसके कुछ दिन बाद शास्त्री जी पण्डित जवाहरलाल जी से मिले और उन्हे बताया कि प्रदेश कांग्रेस में उसके पक्ष में बहुमत नहीं है। नेहरू जी से अनुमति लेकर 5 जनवरी 1951 को उन्होने अपने मंत्रीमड़ल का त्याग पत्र दे दिया। 5 जनवरी 1951 को सत्ता से अलग हो जाने के बाद शास्त्री जी वनस्थली आ गए और उनका जीवन वनस्थली में ही केन्द्रित रहा। 1952 के चुनाव के बाद कुछ कांग्रेसी साथी और बहुत से दूसरे लोग सहयोग मांगने शास्त्री जी के पास आए। उन लोगों के प्रयत्न से भीतर ही भीतर मंत्रीमंड़ल के विरूद्व अच्छा बहुमत हो गया था, पर अन्ततोगत्वा उन लोगों का वह आयोजन पार नहीं पड़ा। शास्त्री जी का मन राजनीति से बिल्कुल हट गया था पर लाल बहादुर शास्त्री और ढ़ेबर भाई के दबाव में आकर 1957 के लोकसभा के लिए चुनाव में खड़ा होना मंजूर किया और भारी बहुमत से विजयी होकर लोकसभा के सदस्य बने।[60] विजयी होकर भी एक सांसद के रूप में वे अपना कोई योगदान नहीं कर पाये। संसदीय कार्यक्रम इस संघर्षो के सेनानी और रचनात्मक सेवा कार्य के एकनिष्ठ साधक को कभी रास नहीं आया। शास्त्री जी स्वयं अपनी इस प्रवृत्ति को स्वीकार करते है।

शास्त्री जी ने अपनी राजनीतिक गतिविधियों को जयपुर तक ही सीमित नहीं रखा था वरन आसपास के अनेक स्थानों पर भी उनकी सक्रियता देखी जा सकती है। समय–समय पर उनके द्वारा विभिन्न स्थानों की राजनीतिक यात्राएं की गयी। 2 अप्रैल 1947 को शास्त्री जी ने धौलपुर राज्य का दौरा किया तथा अपने

राजनीतिक भाषण में मुख्य रूप से कहा कि राज्य और नवाबों को अपने शासन का उत्तरदायित्व प्रजा के हाथों में सौप देना चाहिए। यदि भारतीय राजा, महाराजा समय की गति के अनुसार न चले तो उन्हे रूस और जर्मनी के जार व कैसर की भांति अपना अन्त देखना पड़ेगा। इस दौरे में शास्त्री जी के साथ गोकुलभाई भटट् भी थे। शास्त्री जी द्वारा दिए गए भाषण में हिन्दू और मुस्लमानों से प्रेम पूर्वक आपसी भेद–भाव को भुलाकर संगठित रूप से अपने अधिकारों के लिए शांत और वैधानिक उपायों का अवलम्बन करने का उपदेश दिया गया। शास्त्री जी के भाषण के दौरान बहुत से मुसलमान व्यक्ति भी उन्हें सुनने आए।[61]

हरिजन सेवक समाचार पत्र के माध्यम से ज्ञात होता है कि राजस्थान के प्रधानमंत्री बनने के बाद शास्त्री जी ने अपनी निजी खुराक का अन्न खुद उपजाने की प्रतिज्ञा की थी। शास्त्री जी ने प्रतिज्ञा ली कि वे अपने कपड़ो का सूत कात ही लेते है अब अपने लिए अनाज भी पैदा कर लेगें। शास्त्री जी वास्तव में फक्कड़ आदमी थे, और जैसा कहते थे वैसा कर दिखाने की ताकत भी रखते थे।

हरिजन समाचार पत्र : वर्धा –18–8–48 कि.घ. मशरूवाला दिनांक 28 अगस्त 1948

शास्त्री जी सार्वजनिक हित के लिए राजाओं, जागीरदारों, सेठों, छोटे से छोटे और बड़े से बड़े सरकारी कर्मचारियों आदि से निःशंक मिलते रहे। जनता के साथ घुल मिल जाने की शास्त्री जी की आदत थी परंतु उन्होने किसी से खुद की कोई गर्ज नहीं रखी। जनता की तरफ से कोई भूल शास्त्री जी को दिखाई देती तो वे लिहाज–मुलाहिजें के बिना खरी खरी सुना दिया करते थे। अलवर रियासत के जावली ठाकुर ने शास्त्री जी एक विशाल सभा में एक खुला पत्र दिया–शास्त्री जी ने तालियों की गड़गड़ाहट में कहा "ठाकुर साहब, आपकी जावली तो जावैली" इसी प्रकार जैसलमेर की विराट आम सभा में शास्त्री जी ने कहा–लोग कहते है सागरमल गोपा मर गया, पर मैं कहता हूँ सागरमल जी अमर हो गए और मर गया है जैसलमेर का राजा जवाहर सिंह।[62]

शास्त्री जी एक कुशल राजनीतिज्ञ थे तथा प्रशासक थे। शास्त्री जी ने महज राजस्थान की राजनीति में ही अपनी सक्रिय भूमिका अदा नहीं की वरन भारतीय राजनीति के इतिहास में भी उन्हे याद रखा जाएगा। भारतीय संविधान के निर्माण हेतु जो कमेटी गठित की गई उसमें शास्त्री जी भी शामिल थे।

शास्त्री जी के राजनीतिक व्यक्तित्व के उपर्युक्त लेखे–जोखे से स्पष्ट है कि वे एक ठोस कार्यकर्त्ता और कुशल राजनीतिज्ञ संगठक रहे है। चाहे संघर्षो का उत्कृष्ट संकट काल हो या सुलह समझौतों की नाजुक घड़ी, दोनों ही स्थितियों में उनका व्यक्तित्व समान रूप से निखर कर सामने आया है। दोनों ही स्थितियों में उन्होने निष्पक्ष, निर्भीक और आचरण की दृढ़ता का निर्वाह किया है। जहां तक राजनीति के विधायक अथवा विधि संबधी पक्ष का संबध है, शास्त्री जी की संसदीय गतिविधियों में कभी गहन निष्ठा या रूचि नहीं हुई। कर्मक्षेत्र के धनी इस राजनीतिज्ञ को टेबुल वर्क कभी पंसद नहीं आया। वह या तो रणक्षेत्र का दुर्दम सेनानी रहा था या शांति षिविर का कुशल वार्ताकार। रंग बिरंगी वाक्यावली का शाब्दिक सूत्रधार अथवा कानूनी दाव पेंच का अखाड़ची उन्होने कभी नहीं बनना चाहा।[63]

शास्त्री जी प्रशासक के रूप में

प्रशासनिक क्षेत्र से शास्त्री जी का संपर्क और परिचय यो तो जयपुर राज्य की नौकरी के समय, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से प्रशासन का थोड़ा–बहुत अनुभव उन्हे अपने विद्यार्थी काल में पुरोहित सर गोपीनाथ की फाईले निपटाने और टिप्पणीयां, रिपोर्ट और ड्राफ्ट इत्यादि लिखने के दौरान ही हो गया था, किन्तु एक नीति–निर्माता और निर्णायक प्रशासक के रूप कार्य करने का अवसर उन्हे तब प्राप्त हुआ जब जयपुर राज्य में जनप्रतिनिधियों का उत्तरदायी मंत्रिमंडल बनाया गया और शास्त्री जी उसके मुख्यमंत्री बने। जयपुर के इस मंत्रिमंडल में जब विभागों का बंटवारा हुआ तो शास्त्री जी ने फाइनेन्स विभाग अपने पास रखा। इससे पहले जयपुर राज्य के महकमा हिसाब असिस्टेण्ट अकाउन्टेण्ड जनरल के पद पर दबंग रूप से कार्य करते हुए शास्त्री जी को वित्तीय प्रशासन का अच्छा अनुभव हो चुका था। वे बंबई से इंण्डियन ऑडिट सर्विस की दो परीक्षाएँ भी उत्तीर्ण कर चुके थे। अतः वित्तीय प्रषासनिक समस्याओं की उन्हे अच्छी जानकारी हो चुकी थी। अपने मुख्यमंत्रित्वकाल में स्वतंत्र वित्तीय नीति निर्मित करने और उसे क्रियान्वित करने के अपने अधिकार का साहस और कौशल के साथ प्रयोग करना इनके लिए स्वाभाविक था। उस वर्ष जयपुर राज्य का कुल 3 करोड़ 18 लाख का बजट था। शास्त्री जी ने एक सरसरी दृष्टि में ही तय कर लिया कि बजट कम से कम 4 करोड़ का तो होना ही चाहिए और वह भी किसी प्रकार का टैक्स बढ़ाये बिना। ऐसा करिश्मा कैसे हो सकता था। किन्तु शास्त्री जी दायित्व ओढ़ चुके थे। वे एक बार जो ठान लेते थे उसे पार पटक कर ही रहते है। अतः आमदनी वाले विभागों के अफसरों की मिटिंग बुलाकर शास्त्री जी ने उनका हिस्सा बांट दिया कि टैक्स चोरी को बचाते हुए वे अपने अपने हिस्से की अमुख राशि अधिक वसूल कर देगें। शास्त्री जी जानते थे कि राज्य की आमदनी टैक्स चोरी के किन अन्धेरे बिलों में गुम हो जाती है? विष्वास में लेने पर अधिकारियों ने भी मुस्तैदी से कार्य किया और बजट वृद्धि का लक्ष्य पूरा हो गया। इसकी तुलना जब हम देश की वित्तीय नीति से करते है जिसमें आए दिन जनता पर कमरतोड़ टैक्सों का भार लादा जाता है और मंहगाई, मुद्रास्फीति और काले धन की विभीषिका सुरसा की की तरह मुँह फैलाए देश की रोजी–रोटी, इज्जत और अमन–चैन को निगलें जा रही है तो एक ईमानदार, मितव्ययी और हमदर्द वित्तीय प्रशासक के रूप में शास्त्री जी का उज्जवल अप्रीतम व्यक्तित्व, दिवालिया वित्त मंत्रियों के जमघट में अलग ही उभर कर सामने आता है।[64]

प्रशासक के रूप में एक ओर सफल काम उन्होने राज–काज में हिन्दी को आगे बढ़ा कर किया। न केवल उन्होने राज्यकार्य में हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग के लिए राज्याज्ञाएँ ही प्रसारित की बल्कि यह भी देखा कि गंभीरता से उन पर अमल होता है कि नहीं। इस सिलसिले में उन्होने छोटे बड़े किसी भी अफसर के साथ

कोई रियायत नहीं की। यही नहीं, उन्होंने खुद ने किसी भी फाइल पर कभी एक बार भी एक भी टिप्पणी या आदेश अंग्रेजी में नहीं लिखा। जबकि शास्त्री जी अंग्रेजी के भी अच्छे ज्ञाता थे। उनका अंग्रेजी में किया गया पत्र–व्यवहार इसका साक्षी है कि वे हिन्दी से भी कही सुन्दर गद्य अंग्रेजी में लिखते है। पुरोहित सर गोपीनाथ उन पर जिन अनेक गुणों के कारण प्रसन्न थे उनमें से एक अंग्रेजी में उनकी गति भी थी। फिर भी जन प्रतिनिधि होने के नाते एक निष्ठावान राष्ट्रकर्मी के रूप में उन्होने राष्ट्रभाषा को भरपूर प्रोत्साहन दिया।[65] हर उद्घाटन भाषण के मौके–बेमौके देशी कस्बाई भीड़ के बीच चमड़ा–चपडी जैसे ग्रामोद्योग पर टूटी–फूटी रटी–रटाई फटीचर अंग्रेंजी में अटकता–भटकता भाषण देने की भडास पालने वाले नये पतलूनधारी मिनिस्टर साहबों के आचरण के अंधकार में जब हम इस राष्ट्रभाषा और जनभाषा प्रेम के दीप की लौ को देखते है तो सत् और असत् नेतृत्व लोक का तुलनात्मक विरोधाभास दृष्टि को नया आलोक प्रदान कर जाता है। शास्त्री जी की एक खास बात यह भी जानने लायक व खास है कि सार्वजनिक भाषण हमेषा और हर जगह अपनी जयपुरी बोली में ही देते थे। जयपुर राज्य के मुख्यमंत्री पद को संभाले अभी साल भर पूरा नहीं हुआ था कि विषाल संयुक्त राजस्थान बनने का समय आया जब 30 मार्च 1948 को सरदार पटेल के हाथों राजस्थान का उद्घाटन हुआ। शास्त्री जी के मुख्यमंत्री बनने के निर्णय पर विरोध हुआ जिसका एक कारण यह था कि जयपुर ही राजधानी, जयपुर का ही राजप्रमुख और जयपुर का ही मुख्यमंत्री बनाने का निर्णय लिया था। तथा कुछ साथियों को मंत्रिमंड़ल में न लेना भी एक अन्य प्रमुख कारण रहा होगा। जो भी हो एक ओर शास्त्री जी को संयुक्त राजस्थान के एकीकरण का उलझन भरा भारी कार्य कम से कम समय में सम्पन्न करना था तथा दूसरी और राजनीतिक मनमुटाव और विग्रह बढ़ते ही जा रहे थे। शास्त्री जी का विरोध करने वाले साथियों को पटेल ने फटकार लगायी और नेहरू जी ने भी उन्हे उत्साहित नहीं किया। स्वयं शास्त्री जी ने राजनीतिक उठापटक में समय व्यर्थ खोने की अपेक्षा संयुक्त राजस्थान के एकीकरण के ऐतिहासिक दायित्व को अधिकाधिक लाघव से सम्पूर्ण करने की ओर ही अपना सारा ध्यान केन्द्रित रखा।

इस प्रकार संयुक्त राजस्थान के प्रथम मुख्यमंत्री के रूप और भी गुरूत्तर प्रशासकीय दायित्व सम्पन्न करने का भार शास्त्री जी कन्धों पर आ गया पूर्व जयपुर राज्य के मुख्यमंत्री जैसे अपेक्षाकृत छोटे पद पर पूरी तरह जमकर काम करने के लिए शास्त्री जी को एक साल की मोहलत भी नहीं मिल पाई थी। फिर भी शास्त्री जी इस नये भार को उठाने के लिए कमर कसने को तैयार हो गए।[66] शास्त्री जी को राजस्थान एकीकरण के लिए तीन अनुभवी आई.सी.एस. अफसर केन्द्र की और से दिये गये। उन्होने अच्छा काम किया और शास्त्री जी का ओर उनका परस्पर अच्छा सहयोग रहा। अपने मुख्यमंत्रित्व काल में नये राज्य के भी विभागों और सेवाओं के एकीकरण जैसे कठिन कार्य के अतिरिक्त नये राज्य की वित्तीय स्थिति को संभाले रखकर उसे अपने पैरों पर खड़ा करने और शांति व्यवस्था बनाए रखने का कठिन उत्तदायित्व शास्त्री जी के कंधो पर था। जिसे उन्होने बडी खूबी से निभाया।

छोटा मंत्रिमंड़ल रखने की अपनी धारणा के कारण एवं केवल ईमानदार व्यक्तियों को ही मंत्रीमंड़ल में स्थान देने के कारण एवं ईमानदार व्यक्तियों को ही मंत्रीमंड़ल में स्थान देने के आग्रह के कारण शास्त्री जी ने संख्या वृद्वि नहीं की जिससे कई साथी अप्रसन्न भी हो गए और राजनीति के अखाड़े में अड़चन पैदा कर उनकी टांग खीचने लगें। किन्तु शास्त्री जी राजनीतिक जोड़–तोड़ में पड़ने के लिए तैयार नहीं थे, जैसे उन्होने अपना मानस ही बना लिया था कि राजस्थान के एकीकरण का कार्य तेजी से ओर दृढ़तापूर्वक करना है फिर चाहे मुख्यमंत्री की कुर्सी रहे या न रहे। और वास्तव में एक छोटी सी टीम को साथ लेकर, थोड़े से समय में, कम से कम साधनों का व्यय कर शास्त्री जी ने विषाल राजस्थान के एकीकरण का जो कार्य किया उसका वास्तविक मूल्यांकन कोई जन प्रशासन विज्ञान का प्रतिभा सम्पन्न शोधकर्ता ही प्रस्तुत कर सकेगा। राजस्थान के समझदार और दुनियादारी के लोग आज भी उस मंत्रिमंडल की ईमानदारी, एकता, सादगी और मितव्ययता के लिए याद करते है। एकीकरण के इस कठिन कार्य में शास्त्री जी ने किसी के साथ रू–रियायत नहीं की, न किसी को अपने पक्ष में करने की कोशिश की। तेजी से, इधर–उधर देखे बिना सीधे सपाट चलने के कारण भले ही अनचाहें, कुछ भूले भी हो गई हो जिनका मलाल शास्त्री जी को आज तक है।[67]

साधन और समय कम रहते हुए राजस्थान के एकीकरण का जटिल और बोझिल कार्य होते हुए भी अपने मुख्यमंत्रित्व काल में शास्त्री जी ने राजस्थान भर में जनता के लिए यथावत हित कार्य कर डालने के लिए एक साल की एक करोड़ की योजना बनाई और तीस लाख रूपया निकाला। किसानों, हरिजनों आदि की सेवा के लिए, जो अलग–अलग मंड़ल बनाकर उनके सुर्पूद कर दिया गया। उस समय राजस्थान का कुल बजट 16 करोड़ था। ऐसे में प्लानिंग की यह कल्पना बहुत अच्छी थी। अपने दैनंदिन प्रशासन में शास्त्री जी कितने दृढ़ और निस्पृह थे यह उन दो उदाहरणों से भली भाँति सिद्व हो जाता है। एक उदाहरण यह है कि अपने एक परिचित और पुराने अफसर को शास्त्री जी अपने ही हस्ताक्षरों से मनमाने तौर पर बढ़ा हुआ वेतन ले लेने पर त्याग पत्र देने और अतिरिक्त वेतन राज्यकोष में लौटाने के लिए विवष कर दिया था। दूसरा उदाहरण जब किसी बाहर की कंपनी ने मनोरंजन का आदेश प्राप्त कर उनकी आड़ में जूऐं का धन्धा चालू कर दिया था तो पता चलते ही शास्त्री जी ने मौके पर पहुँच कर उस कंपनी का लाईसैन्स वही रदद् कर उसे राजस्थान छोड़कर जाने पर मजबूर कर दिया था।[68]

शास्त्री जी के कुशल प्रशासक होने की छाप उनके द्वारा राजस्थान के प्रथम बजट (1950–51) में भी भली भांति दिखाई देती है। अपने पहले बजट भाषण में शास्त्री जी ने राज्य की वित्तीय दषा का विवेचन करते हुए स्पष्ट कर दिया था कि वह आमदनी के अनुसार खर्च करेगें अर्थात उनके अनुमानों के अनुसार आमदनी आती

हुई दिखाई नहीं देगी तो बजट में रखे हुए किसी भी खर्च को कम कर दिया जाएगा। शास्त्री जी राज्य को स्वावलंबी बनाने के पक्ष में थे वे मानते थे किसी भी काम के लिए केन्द्र के सामने हाथ फैलाना उचित नहीं है। जिसका उदाहरण शास्त्री जी ने अपने प्रशासन के दौरान प्रस्तुत किया व केन्द्र द्वारा अनाज की सहायता देने पर उसे अस्वीकार कर दिया गया तथा कहा, कि वे अपना इंतजाम स्वयं करेगें। शास्त्री जी ने अपने बजट में प्रथम वर्ष के लिए एक करोड़ की राशि जनकल्याणकारी योजना, यथा शिक्षा, चिकित्सा स्वास्थ्य, सड़क निर्माण आदि के लिए रखी। अलग–अलग क्षैत्रों में रचनात्मक कार्यक्रमों को गति देने के लिए दस मंडलों, संस्कृति, लोकशिक्षण, मजदूर, आदिवासी, शराणर्थी, हरिजन, किसान, स्वायत्त शासन, ग्रामोद्योग, आयुर्वेद का गठन कर तीस लाख रूपये का विषेष प्रावधान किया। इस प्रकार शास्त्री जी द्वारा प्रस्तुत बजट उनके सूझ–बूझ व कुशल प्रशासक होने का परिचायक था।[69]

राजस्थान निर्माण के बाद का सारा समय नए शासन के लिए चुनौती भरा था। क्योकि राजस्थान की विभिन्न रियासतों में प्रषासनिक तंत्र में ही नहीं, शासन व्यवस्था में भी भारी विषमता थी। एक रियासत के बजट में तो भारी घाटा विरासत में मिला था। इधर राजाओं के शासन से अलग हो जाने के कारण जागीरदारों व ठिकानेदारों की भी समस्या थी, ये लोग सर्वदा आजाद होने का भ्रम पाले हुए थे इसलिए शांति व्यवस्था की भी समस्या थी। नये शासन के समक्ष सभी दृष्टियों से पिछडे हुए किन्तु प्राकृतिक साधन सम्पन्न राज्य के विकास की चुनौती भी थी। स्वतत्रंता के बाद जनता को नये शासन से बहुत अपेक्षाऐं थी उनकी ओर भी ध्यान देना अनिवार्य था। राज्य में प्राकृतिक संसाधन तो थे किन्तु सब अविकसित पड़े थे और उनका उपयोग राज्य की समृद्धि के लिए करने के लिए धन की जरूरत थी। इन सभी समस्याओं को शास्त्री जी ने कुशल प्रशासक की तरह हल करने का प्रयास किया।[70] शांति और व्यवस्था की स्थिति यह थी कि तीन अनिवार्य दर्दनाक घटनाओं को छोडकर इस नए राज्य में सर्वत्र शांति और व्यवस्था रही, भीलवाड़ा के पास सुवाना के गोलीकांड होने और झालाना स्टेशन के पास शरणार्थियों पर गोली चलने की घटनाओं के पीछे शास्त्री जी या मंत्रीमंडल का आदेश नहीं था, बल्कि उनकों यह जानकारी भी बाद में हुई थी। करौली के इलाके में देहातियों ने पुलिस पर भंयकर हमला कर दिया था। वह स्थान दूर एकांत में था तथा आवागमन और संचार के साधन भी उन दिनों आज जैसे विकसित नहीं थे। प्रत्यक्ष दायित्व न होते हुए भी शास्त्री जी ने इन तीनों घटनाओं के लिए दुःख प्रकट अपनी आत्मकथा में किया है। क्योंकि उनका शासनकाल रक्तपात और हिंसा से कभी कलंकित न हो यही शास्त्री जी की हार्दिक अभिलाशा और प्रयत्न रहे थे।

शास्त्री जी चाहे जीवन कुटीर के झोपड़े में रहे, चाहे मुख्यमंत्री की सत्ता कुर्सी पर, चाहे संसद सदस्य के रूप में सर्वत्र वे अपनी उसी फक्डाना वेशभूषा, स्वभाव और अन्दाज में नजर आए। कभी उन्होने अपने अन्तरंग और बहिरंग में बहुरूपियापन की कलाबाजी को स्थान नहीं दिया। अपने प्रशासन की अवधि में उन्होंने राज्य को सीदा–साधा ईमानदार मंत्रीमंड़ल, स्वच्छ प्रशासन और स्वावलंबी अर्थव्यवस्था देने की कोशिश की। शरणार्थियों के आवागमन से जर्जर, विभाजन से बिगड़ी और पहले से पिछड़ी हुई कृषि अर्थव्यवस्था होते हुए भी उन्होने एक बार केन्द्रीय खाद्यमंत्री श्री के.एम. मुन्षी के जयपुर आने और खाद्य सहायता की राशि की मद पूछने पर अपने खाद्यमंत्री से बात कर तुरंत लिखकर दे दिया कि राजस्थान को केन्द्र से कुछ नही चाहिए, वह अपना खाद्य प्रबंध खुद कर लेगा। शास्त्री जी की एक समर्थ, निष्पक्ष, कुशल और निर्णायक प्रशासक थे, यहा कुछ दृष्टांत प्रस्तुत किए जा रहे है जो यह सिद्व करते है कि शास्त्री जी की सिद्वान्तवादिता तथा बिना किसी बाहरी प्रभाव या दबाव के वे अपनी रीतिनीति के अनुसार ही प्रशासन को दृढ़तापूर्वक संचालित किया करते थे–

जयपुर शहर के भीतरी रास्तों में गंदगी फैल जाने का समाचार मिलने पर मुख्यमंत्री शास्त्री जी नगरपालिका के अध्यक्ष आदि अधिकारियों को व मौहल्ले के कार्यकर्ताओं को साथ लेकर सफाई करने में जुट गए और यह प्रातःकालीन कार्यक्रम शहर भर में कई दिनों तक चलता रहा।

शास्त्री जी के हिन्दी के प्रति प्रगाढ़ प्रेम होना इसी से सिद्व हो गया था कि उन्होने किसी भी फाईल पर एक बार भी अंग्रेजी में नोट नहीं लिखा शास्त्री जी ने व्यवहारिक उपयोग के लिए अंग्रेजी हिन्दी के शब्दों का एक छोटा सा कोष बनवाया।

जगीरदारों के मामलों में शास्त्री जी का रूख एक तरफ बहुत सख्त होता था तो दूसरी ओर बड़े मिठास का और समझौते का था। एक जागीरदार के अवैध शराब बनाने की रिपोर्ट आने पर शास्त्री जी ने ठिकाने के गढ़ पर धावा बुलवा दिया और नरमी करने के पक्ष में कहीं हुई महाराजा की बात भी नहीं सुनी।

शास्त्री जी का स्वभाव ठोस रचनात्मक काम करने का था सो उनके पास राज–काज के भी थोथे प्रचार के लिए स्थान नहीं था फलतः वे समाचार पत्र वालो से दूर ही रहते थे। उनको खुश करने का तरीका शास्त्री जी ने कभी नहीं अपनाया। अच्छे प्रशासक के रूप में शास्त्री जी अपनी जिम्मेदारियों को स्वय के बूते कर करना उचित समझते थे, इसलिए वे केन्द्रीय सरकार के पास दौड़–दौड़ कर नहीं जाते थे। कोई खास काम होता तो वे किसी दूसरे व्यक्ति को दिल्ली भेज देते थे। परंतु जब कभी इच्छा होती और समय निकाल पाते तो दिल्ली जाकर नेहरू जी, राजेन्द्र बाबू, सरदार पटेल आदि से व्यक्तिगत तौर पर मिल आते।

गोलमाल करने वाले कर्मचारी अधिकारी के साथ शास्त्री जी का व्यवहार बहुत सख्त होता था। शास्त्री जी को ईमानदारी और मजबूती के लिए सब जानते थे। ये सभी दृष्टांत शास्त्री जी की स्पष्टवादिता व कुशल प्रशासन के उदाहरण है।[71]

पौने दो साल के अपने शासनकाल में शास्त्री जी ने राजस्थान का एकीकरण किया, शान्ति व्यवस्था बनाए रखी, खाद्य में आत्मनिर्भरता का निर्वाह किया। शरणार्थियों का पुर्नवास किया। और इन सारी सेवाओं के

प्रतिफल में पाया क्या था? साथियों द्वारा षडयंत्र शुद्ध राजनीतिक दलबंदी और अपनी प्रिय संस्था वनस्थली पर राजकार्य में व्यस्त रहते हुए पर्याप्त ध्यान न पाने के कारण 6 लाख रूपये का कर्ज। बरसाती नेताओं की मौसमी संस्थाऐं जहा मंत्रिपद की कुर्सी की बैशाखी के सहारे ही चलती और उत्कोच के खाद्य पर ही फलती–फूलती है, वही इस अड़िग प्रशासक के मंत्रित्व काल में वनस्थली ऋणग्रस्त हो गयी थी। कैसा विषम योग है? शास्त्री जी जैसा एकनिष्ठ कर्मयोगी ही अपने राजनीतिक सामाजिक जीवन में ऐसी हठयोगी साधना कर सकता है। भारत सरकार द्वारा शास्त्री जी के मरणोपरान्त डाक टिकट भी सन् 24.11.1976 में निकाला गया था।

अध्ययन का उद्देश्य

इस शोध पत्र का उद्देश्य भारत के स्वतंत्रता संग्राम में राजस्थान की भूमिका उल्लेख किया गया है। स्वाधीनता संग्राम में पं. हीरालाल शास्त्री का योगदान एक राजनीतिज्ञ के रूप में व एक प्रशासक के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्ष

प्रशासक के रूप में जोबनेर के इस कर्मठ धरती के बेटे के जिम्मे पांतियों में बटी राजस्थान की राजनीति जमीनों को मिलाकर उनकी एक चक बनाने की नई परती को तोड़कर उसे समतल करने और उसके झाड़–झखाड़ उखाड़ कर उर्वरा बनाने का कष्ट साध्य और कंटककार्कीण काम हाथ आया था। इस कार्य के करते हुए कुछ पौधे भी जल्दबाजी में या अनचाहे ही उखड गये होगें किन्तु यह भी सच है कि स्वयं उसे कांटो की खरोचें कम नहीं लगी है। प्रशासन की कठोर धरती को तोड़कर निराई–गुडाई द्वारा उसे तैयार कर उसमें आगे उसमें विकास के फूल खिलने के लिए पथ प्रशस्त कर दिया।

सन्दर्भ

1. *सुखवीर सिंह गहलोत : राजस्थान स्वतंत्रतापूर्व एवम पश्चात, पृ. 98*
2. *भगवान सहाय त्रिवेदी : राजस्थान का लौह पुरूष पं. हीरालाल शास्त्री, पृ. 39*
3. *सुखवीर सिंह गहलोत : राजस्थान स्वतंत्रतापूर्व एवम पश्चात, पृ. 98*
4. *बी.एल. पानगडिया : राजस्थान का स्वतंत्रता संग्राम, पृ. 53–54*
5. *शर्मा एवम् व्यास : राजस्थान का इतिहास, पृ. 384*
6. *रामपाण्डे– पीपुल्स मूवमेन्ट इन राजस्थान, जयपुर, पृ. 48*
7. *भगवान सहाय केला : देशी राज्यों में जनजागृति, पृ. 253*
8. *जयपुर प्रजामंडल, बस्ता न. 7 फाईल न. 6 बी, पृ. 230, राजस्थान राज्य अभिलेखागार (अ.बी.)*
9. *राजस्थान का लौह पुरूष पं. हीरालाल शास्त्री सीकर संदेश, 28 दिसम्बर, 1975*
10. *जयपुर प्रजामंडल, बस्ता न. 7 फाईल न. 6 बी, पृ. 124 (अ.बी.)*
11. *पं. हीरालाल शास्त्री : प्रत्यक्षजीवनशास्त्र, पृ. 66*
12. *भगवान सहाय त्रिवेदी : राजस्थान का लौह पुरूष पं. हीरालाल शास्त्री, पृ. 40*
13. *जयपुर प्रजामंडल, बस्ता न. 7 क्रमांक न. 29 फाईल न. 01 बी, पृ. 23 (अ.बी.)*
14. *भगवान सहाय केला:देशी राज्यों में जनजागृति,पृ. 253*
15. *बी.एल. पानगडिया : राजस्थान का स्वतंत्रता संग्राम, पृ. 61*
16. *मदन गोपाल शर्मा : वनस्थली का वानप्रस्थी, पृ. 38*
17. *बी.एल. पानगडिया : राजस्थान का स्वतंत्रता संग्राम, पृ. 61*
18. *पं. हीरालाल शास्त्री : प्रत्यक्षजीवनशास्त्र, पृ. 559*
19. *मदन गोपाल शर्मा : वनस्थली का वानप्रस्थी, पृ. 38*
20. *डॉ पेमारामःशेखावाटी किसान आन्दोलन का इतिहास, पृ. 165*
21. *वही, पृ. 166*
22. *जमनालाल बजाज पेपर्स : पत्र व्यवहार, भाग 6, पृ. 401–02*
23. *पं. हीरालाल शास्त्री : प्रत्यक्षजीवनशास्त्र, (भाग प्रथम) पृ. 67*
24. *बी.एल. पानगडिया : राजस्थान का स्वतंत्रता संग्राम, पृ. 62*
25. *भगवान सहाय त्रिवेदी : राजस्थान का लौह पुरूष पं. हीरालाल शास्त्री, पृ. 41–42*
26. *हिन्दुस्तान टाईम्स, 11/03/1939*
27. *जयपुर प्रजामंडल 18/03/1939 जयपुर प्रजामंडल पत्रावली क्रमांक ब.न. 24, पृ. 48 (अ.बी.)*
28. *भगवान सहाय त्रिवेदी : राजस्थान का लौह पुरूष पं. हीरालाल शास्त्री, पृ. 41–42*
29. *रतन शास्त्री : अपनी कहानी, अपनी जुबानी पृ. 31*
30. *मदन गोपाल शर्मा : वनस्थली का वानप्रस्थी, पृ. 40*
31. *डॉ. विनीता परिहार : राजस्थान में उत्तरदायी शासन के लिए संघर्ष, पृ. 40*
32. *पं. हीरालाल शास्त्री : प्रत्यक्षजीवनशास्त्र, पृ. 98*
33. *रामपाण्डे : जयपुर राज्य का प्रजामंडल, पृ. 98*
34. *भगवान सहाय त्रिवेदी : राजस्थान का लौह पुरूष पं. हीरालाल शास्त्री, पृ. 42*
35. *पं. हीरालाल शास्त्री : प्रत्यक्षजीवनशास्त्र, पृ. 70*
36. *भगवान सहाय त्रिवेदी : राजस्थान का लौह पुरूष पं. हीरालाल शास्त्री, पृ. 43*
37. *शंकर सहाय सक्सेना : जो देश के लिए जिये, पृ. 147*
38. *बी.एल. पानगडिया : राजस्थान का स्वतंत्रता संग्राम, पृ. 134*
39. *हीरालाल शास्त्री से मिर्जा ईस्माइल परिशिष्ट–3,16 सितम्बर 1942 का पत्र*
40. *बी.एल. पानगडिया : राजस्थान का स्वतंत्रता संग्राम, पृ. 66*
41. *सुमनेश जोशी : राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 293*
42. *बी.एल. पानगडिया : राजस्थान का स्वतंत्रता संग्राम, पृ. 66*
43. *पं. हीरालाल शास्त्री : प्रत्यक्षजीवनशास्त्र, (भाग प्रथम) पृ. 71*
44. *शंकर सहाय सक्सेना : जो देश के लिए जिये, पृ. 147*

45. मदन गोपाल शर्मा : वनस्थली का वानप्रस्थी, पृ. 41
46. पं. हीरालाल शास्त्री : प्रत्यक्षजीवनशास्त्र, (भाग प्रथम) पृ. 73
47. मदन गोपाल शर्मा : वनस्थली का वानप्रस्थी, पृ. 41
48. सुमनेश जोशी : राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 295
49. डॉ. गंगाधर भटट् :स्वतंत्रता सेनानी पं. देवीशंकर, पृ. 204
50. डॉ. एम.एस. जैन : आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 362
51. पं. हीरालाल शास्त्री : प्रत्यक्षजीवनशास्त्र, पृ. 84
52. सुमनेश जोशी : राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 296
53. बी.एल. पानगडिया : राजस्थान का स्वतंत्रता संग्राम, पृ. 87
54. बी.एल. पानगडिया : राजस्थान का स्वतंत्रता संग्राम, पृ. 133
55. वनस्थली समाचार : वनस्थली पत्रिका का पाक्षिक परिशिष्ट, 16 जनवरी 1975
56. डॉ. एम.एस. जैन : आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 390
57. बी.एल. पानगडिया : राजस्थान का स्वतंत्रता संग्राम, पृ. 134
58. भगवान सहाय त्रिवेदी : राजस्थान का लौह पुरूष पं. हीरालाल शास्त्री, पृ. 48
59. सुमनेश जोशी : राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 296
60. पं. हीरालाल शास्त्री : प्रत्यक्षजीवनशास्त्र, पृ. 82
61. हीरालाल शास्त्री भाषण : दैनिक समय, 4/4/47
62. सुमनेश जोशी : राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, पृ. 299–300
63. मदन गोपाल शर्मा : वनस्थली का वानप्रस्थी, पृ. 42
64. वही, पृ. 44
65. पं. हीरालाल शास्त्री : प्रत्यक्षजीवनशास्त्र, पृ. 82
66. मदन गोपाल शर्मा : वनस्थली का वानप्रस्थी, पृ. 45
67. पं. हीरालाल शास्त्री : प्रत्यक्षजीवनशास्त्र, पृ. 82
68. वही, पृ. 290
69. प्रवीणचन्द छाबड़ा – राजस्थान पत्रिका, 10 मार्च 2010, पृ. 4
70. मदन गोपाल शर्मा : वनस्थली का वानप्रस्थी, पृ. 51
71. वहीं, पृ. 53
72. गुगल सर्च 2017